बगिया बिन गुलाब की

(महाकाव्य)

महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया



कलासन प्रकाशन
कल्याणी भवन, बीकानेर (राज)

ISBN 81 86842 12 8

संस्करण	प्रथम 1998
आवरण	सार
मुद्रक	कल्याणी प्रिन्टर्स
	माल गोदाम रोड बीकानेर
प्रकाशन	कलासन प्रकाशन
	बीकानेर (राज)
मूल्य	100 रुपये

Bagia Bin Gulab Ki
(EPIC) by Mahopadhaya Manakchand Rampuria
Price 100/

अन्तरानुभूति

यह कोई प्राक्कथन अथवा ग्रथ भूमिका नहीं है। यह मात्र अन्तरानुभूति है। जो मैं अपने सहृदय पाठकों के साथ एकाकार होकर अनुभूत करना चाहता हूँ।

जीवन एक सतत प्रवाह है। इस प्रवहमान तरगो मे अनेकानेक ऐसे क्षण आते हैं जो जीवन को आन्दोलित करते हैं। सच पूछा जाए तो ऐसे ही विपुल सघातिक क्षणो के समुच्चय से जीवन–श्रृखला का निर्माण भी होता है। यह साधारण स्थिति है कि प्रसन्नता के क्षणो मे मन आह्लादित होता है और व्यथा उसे कातर बनाती है। किन्तु, जिस प्रकार सम्पूर्ण जीवन का कोई एक क्षण उसके सम्पूर्ण आयाम को तरगित कर जाता है उसी प्रकार पुजीभूत मार्मिक वेदना मन के समस्त तारो को झकृत किए बिना नहीं रह सकती।

जीवन के लगभग चार दशक जिनके साहचर्य में बीते उनका बिछोह पत्थर हृदय को भी करूणा–कवलित कर सकता है फिर एक भुक्त–भोगी का तो कहना ही क्या!! अन्तर के एक–एक तार बिखर गए। हृदय का एक–एक रेशा छिन्न–भिन्न हो गया।— ऐसा आघात जहॉ प्रथम सवेग मे मूकता आती है। मनुष्य आवाक होकर प्रकृति की लीला देखता रहता है— क्या से क्या हो गया?— कुछ बोल नहीं पाता। यह निर्वाकता उसे अन्तरावलोकन की प्रेरणा देती है। और तब

सारे बन्धन खुल जाते हैं। गतिरोध की श्रृखलाऍ छिन्न–भिन्न हो जाती हैं। यही स्थिति है जब मनुष्य अपने अन्त करण से अश्रु–विगलित होकर फूट पडता है और नयनो की राह बहने लगता है।

यहॉ एक बात की ओर इगित करना आवश्यक है। जब वेदना आत्यतिक रूप में घनीभूत हो जाती है तब दो ही मार्ग हैं जिनका अनुसरण वेदनाभिभूत हृदय के लिए श्रेयष्कर है। प्रथम वाणी की मूकता। वाणी इस प्रकार अवरूद्ध रहती है कि शब्दो को भी मार्ग नहीं मिलता भावो के प्रस्फुटन की तो बात ही दूर रही। दूसरा मार्ग भावाभिभूत हृदय में विगलित भावों को श्रद्धा–सुमेरू में पिरोकर अपनी वेदना को सार्वभौम धरातल पर अभिसिचित करना।

कवि हृदय मूलत भावनाओ के आग्रही रहे हैं। साथ ही कविता को वेदना से ही नि सृत कला–केलि कहा गया है— 'वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान। सचमुच घनीभूत वेदना जब आँखों की राह बहने लगती है तो अनजाने ही कविता बन जाती है।

आप मानें या न माने 'बगिया बिन गुलाब की — मेरी कोई सायास कृति नही है। इसकी सरचना मेरे किसी प्रयास के प्रतिफल नहीं है। ये सारी ससृष्टि अनायास ही उतरती गयी। और अन्त में देखा तब लगा कि यह पीडा का वही पुजीभूत रूप है जो हमारी रागात्मिका वृति के साथ घुलमिल कर एकाकार हो गयी थी। और आज छन्दों मे फूट पडी है।

पत्नी का वियोग कैसा होता है वह घनीभूत वेदना छन्दो के माध्यम से जो स्वरूप अगीकृत कर सका है वह आपके समक्ष है। साथ ही मेरे इस वियोग के आलम्बन के साथ परिवार के एव समाज के तथा और भी मित्रों–अतिथियो का उनके साथ जो सम्पर्क तथा साहचर्य रहा— यत्किचित उनका भी परिदर्शन पुस्तक में हो जाता है।

एक बात और—

यह कृति सर्वथा मेरी निजी भावनाओं का प्रस्फुटन है। सुधि काव्य–मर्मज्ञों को इसमें वेदना के मानवीकरण के रूप मे यदि भावो के आदोलित होने का एक लघु क्षण भी प्राप्त हुआ तो यही मेरे लिए पर्याप्त होगा।

कविकुल कमल दिवाकर साहित्य मनीषी आ भाई श्री गोवर्द्धन प्रसाद जी 'सदय ने प्राक्कथाक एव कविकुल चूडामणि भाई श्री लक्ष्मीनारायण जी रगा ने 'बगिया बिन गुलाब की महाकाव्य पर जो अपने उद्गार प्रकट किए उसके लिए हृदय से आभारी हूँ। अत अनेकानेक धन्यवाद।

शुभेस्तु

माणकचन्द रामपुरिया

रामपुरिया भवन
रामपुरिया मार्ग बीकानेर

समर्पण—

 री गुलाब! यह मर्म वेदना—
क्यों कर इसे भुलाऊँ।
'बगिया बिन गुलाब की' से मधु—
सौरभ कैसे पाऊँ!!

माणकचन्द रामपुरिया

बगिया बिन गुलाब की



स्व श्रीमती गुलाब देवी धर्मपत्नी श्री माणकचन्द रामपुरिया

जन्म 1936 निधन 9 दिसम्बर 1987

'बगियाँ' बिन गुलाब की

श्री माणकचन्द रामपुरिया का महाकाव्य बगिया बिन गुलाब की एक करुणाकाव्य है अश्रु–महाकाव्य है। यह महाकाव्य उनकी महा पीडा एव एकान्तता की मुखर अभिव्यक्ति है। माना इसकी पीडा उनके अपने जीवन की पीडा है पर अनेक स्थलो पर सुधि पाठक की ऑखें नम और दिल मे गम जगा देती है। काव्य एक विडम्बना दर्शाता है कि सुखों के रग महल में रहने वाला कवि नियति और विधाता के हाथो कितना सताया और तडपाया गया है— फूलो ने उसके नाजुक दिल मे कितने पैने शूल चुभोये हैं अपनो ने उसे कितना रुलाया है मझधार में डुबोया है।

महाकाव्य 21 सर्गों में सम्पादित हुआ है। कथासूत्र कवि के व्यक्तिगत जीवन से बुने गए हैं— जो वर्तमान की हथेली से फिसल–फिसल कर फ्लेश बैक में चले जाते हैं। घटनाक्रम मे बीकानेर कलकत्ता स्वजन–परिजन मित्र–बधु, डाक्टर–चिकित्सक अग्रज–पूर्वज सब उभर कर आते हैं। इसमें ऐसे अभागे कवि की करुणकथा है जिसे विधाता ने स्वर्ग मे जन्म देकर भी सब कुछ छीन लिया। जीवन की यह विसगति कितनी पीडादायक एव त्रासदीपूर्ण है कि भाग्यरेखा सुखों से भर दी और जीवन रेखा आसुओं से। सुख–सुमनों के वसत में जन्मने वाला कवि आज असीम महादुखद मरूस्थल मे सूर्य की प्रचण्ड किरणों भीषण लुओ और सुलगती धरती के बीच अकेला खडा है— नितान्त अकेला।

ऐसे व्यक्तिपरक करुण महाकाव्य को शास्त्रीय कसौटी पर कसना कदाचित् उचित नहीं रहेगा। महाकाव्य के प्रचलित शास्त्रीय एव तात्विक निकष इसके साथ न्याय नहीं कर पाएगे। तरल–गरल भावनाओं पर रचित काव्य को भावना की परखी ही आक सकती है— शुष्क सिद्धान्त नहीं। वैसे भी माणक जी कई महाकाव्यों के रचियता हैं इस महाकाव्य में भी उन्होंने शास्त्र सम्मत निर्वहन यथास्थान किया है।

कवि की नियति देखिए

मैं तो जनम–जनम का दुखिया—
दुख ही मात्र सहा है

कातर होकर दर्द हृदय का–
फिर भी नही कहा है।

पिताश्री एव माताश्री के बचपन मे ही स्वर्गवास होने पर

लेकिन इनके जाते ही सब कुछ
स्वय विलीन हुआ था
सब कुछ पाकर भी जग मे
सब से दीन हुआ था।

काल के कठोर आघात ने कवि के जीवन को झकझोर ही डाला

लेकिन ऐसा वज्र पडा है
इतना भार गहन है
तन तो हुआ निढाल ध्वस्त
जर्जर पूरा मन है।

जीवन सगिनी द्वारा मझधार मे साथ छोड देने पर घायल मन कराह उठा

पहिले तो बस तनिक पीर जो
जगी की तुम आती थी
दर्द भरे घावो को हर क्षण
तुम ही सहलाती थी।

पत्नी का दर्द अभी शान्त हुआ ही नहीं था कि नियति ने प्रिय पुत्र प्रदीप को कवि से असमय छीन लिया वह चीख उठा

उसको क्या ? समझो खुद मुझको
मौत लीलने आई।

मौत सब कुछ छीन लेती है पर वह स्मृतियॉं क्या नहीं छीन लेती ? ये स्मृतिया जीवन पर्यन्त सुलगाती रहती है। सुपत्नी गुलाब की दीवारो पर कला को देख कर कवि एक अजीब याचना करता है

चित्र बनाये बहुत किन्तु अब
मेरा चित्र बनाओ
जितना मुझमें चित्रों में भी
उतना आसू लाओ

सुख की समाप्ति अन्तहीन दु ख में और महकते–चहकते जीवन का अन्त क्रूर काली मौत में देख कर कवि की दर्शन ने आखें खोली

जीवन और मृत्यु की घाटी



माणक चन्द स्व धर्मपत्नी गुलाब देवी रामपुरिया (आत्मजा स्व श्री माणक चन्द जी सा खजाची) तथा श्रीमती सुधा देवी व दिवगत पुत्र प्रदीप के साथ



माणकचन्द रामपुरिया आयुष्मान दोहित्र आदर्श वाठिया आयुष्मती दोहित्री पल्लवी एव आयुष्मान दोहित्र पीयूष कोठारी के साथ।



दिवगत पुत्र प्रदीप कुमार एव श्रीमती सुधा देवी रामपुरिया
(आत्मजा स्व साहजी श्री जेठमल जी सा सुराणा)

आयुष्मान कँवर सा सुमति लाल जी (आत्मज स्व साहजी श्री चम्पालाल जी सा वोठिया) एव आयुष्मती वेटी प्रभा वोठिया

दिवगत कँवर सा सतोप कुमार जी (आत्मज स्व साहजी श्री वहादुर सिह जी सा कोठारी) एव आयुष्मती वेटी प्रतिभा कोठारी



आयुष्मान कॅंवर सा श्री शान्तिलाल जी (आत्मज स्व साहजी श्री चम्पालाल जी सा वैद) एव आयुष्मती [illegible]

कितनी छोटी लगती
जो मुस्कान अभी फूटी थी
तुरत चिता पर जलती।

चिता की ज्वालाओं ने कवि के सम्पूर्ण जीवन को झुलसा दिया

मृगतृष्णा के जटिल बंध में
जकडा अन्तस्तर है
नीचे जलती कडई धरती
जलता नभ ऊपर है।

जीवन भी झुलसा घर भी झुलसा

घर का हाल यही है पहले
से सब भिन्न हुआ है
जड उखडी है तरु का पत्ता
पत्ता छिन्न हुआ है।

मौत ने जीवन–बेल से जो कोमल–कोमल पत्ते नोच लिए तो तन जल उठा मन जल उठा बस आग ही आग

ऐसे तो मन में हर क्षण ही
आग सुलगती रहती
रग–रग में अब धार रक्त की
ज्वाला बन कर लहती।

कवि को तो अब हर हालात मे जलना है पल–पल दहकना है

आग हृदय में और नयन में
पानी सदा रहेगा
झम–झम झरते सावन में भी
अविरल प्राण दहेगा।

बिन गुलाब की बगिया में जब बसन्त झिझकता–सहमता आएगा तो

किंशुक के जब लाल–लाल दल
अपने आप खिलेंगे
आखों से तब लहू निकलकर
बहने नहीं लगेंगे।

आँसुओं के सैलाब को पार कर जब भी कवि इस हवेली में आया तो

एक–एक दरवाजा खुलकर
मुझसे यही कहेगा

बोल अकेले बड़े महल में
कैसे यहाँ रहेगा।

पूरा का पूरा घर पुकार उठेगा
घर भर से आवाज पड़ेगी
मुझको यही सुनाई
री गुलाब ! तू गई कहाँ है ?
आज नहीं क्यों आई ?

क्या जवाब दे गुलाब की माँ बीकानेर की धरती को घर की दरो-दीवार को गुलाब को तरसती दूब को घर की ड्योढी को खिड़की और झरोखों को कि गुलाब कहाँ गई ? कहाँ गई गुलाब ? कैसे धीरज बधाए मातृहीना सुधा को– जब वह फफकती सिसकती पूछती है

पुत्रवधु कहती है माँ सा
बोलो कहाँ गई है ?
कैसे कह दू पुत्र जहाँ है
वह भी वहाँ गई है।

ऐसे में आसू गीले स्वर में असहाय सा कवि सहायता के लिए चीख उठता है

री गुलाब ! अब राह यहाँ पर
तुम्हीं दिखाओ क्या है ?
बिन गुलाब की बगिया का
अस्तित्व बताओ क्या है ?

बिन गुलाब की बगिया आज भी सूनसान है वीरान है पत्ता-पत्ता तिनका-तिनका अश्कबार है बिन गुलाब की बगिया है आसुओं की बगिया।

लक्ष्मीनारायण रगा

प्राक्कथन

बगिया बिन गुलाब की एक महाकाव्य है। महोपाध्याय महाकवि माणकचन्द रामपुरिया ने इस महाकाव्य का प्रणयन कर एक ऐसे नए वातायन को खोला है जो आज के साहित्य के लिए नया होते हुए भी परम्परा से अछूता नहीं है। महाकाव्य की जो परम्परावादी परिभाषा रही है उससे यह सर्वथा भिन्न है।

प्राचीनकाल से ही सयोग और वियोग की भावनाओं को वाणी देकर अनमोल साहित्य गढे गए हैं। प्रस्तुत महाकाव्य वियोग की आधारशिला पर सुरचित है। साथ ही एक धारणा बहुत दिनों से साहित्य-मीमासकों में चली आ रही है कि महाकाव्य में उदात्त चरित्र का नायक होना चाहिए जिसके सम्पूर्ण जीवन को उसमें अकित किया गया हो। साथ ही मुख्य कथा सरणि के साथ अवान्तर कथाओं को भी स्थान दिया गया हो। इसके अलावा सर्गों अथवा अध्यायों की सख्या का भी उल्लेख महाकाव्यों की परिभाषा गढते समय किया गया है। महाकाव्य के सबध में अब तक जितनी परिभाषाएँ बनती गयीं वे उत्तरोत्तर अपने आप ही टूटती भी गयी हैं। किसी ने परिभाषा के एक पक्ष को तोड़ा है तो किसी ने दूसरे पक्ष को। इससे एक तथ्य स्पष्ट परिलक्षित है कि महाकाव्य की जो भी परिभाषा अब तक बनी है वह अन्तिम नहीं कही जा सकती। परिभाषाएँ बनती रहती हैं मिटती रहती हैं। किन्तु महाकाव्य लिखनेवाले इसे अनदेखा करते हुए अपने साहित्य के सृजन में लगे रहते हैं। ऐसे ही महाकवियों की कड़ी में महाकवि माणकचन्द रामपुरिया का विशेष स्थान है। इनके महाकाव्य में परम्परागत परिभाषाएँ नहीं पालित हुई हैं किन्तु महाकाव्य के वे सारे गुण निहित हैं अनुस्यूत हैं जो किसी भी वरेण्य कृति को चिरजीवी करने के लिए पर्याप्त हैं।

प्रस्तुत महाकाव्य वेदना के महासागर की एक उद्दाम उर्मि है टूटे हुए हृदय का उद्‌गार है और उसी सारस्वत उदगाराभिव्यक्ति में कवि ने अपने जीवन का सुस्पष्ट अकन किया है।

बचपन में ही पूज्य पिता की
छाया छूट गयी थी
करुणामयी विमल माता की
ममता टूट गयी थी।

माता-पिता की वात्सल्यमयी छाया से विलग होने पर उसके जीवन में जो उदासी घर कर गयी थी उसका अन्त विवाहोपरान्त पत्नी के आगमन पर होता है-

जब विवाह था हुआ हृदय में
ज्वार खुशी का आया
खिला-खिला के फूल अनोखे
उपवन खूब सजाया।

घर में खुशी का वातावरण आया। सन्तानें हुईं। सारा परिवार एक बाग की तरह खिल उठा। नयी सुरभि और महक सारे वातावरण को आप्यायित करने लगी। किन्तु विधाता से यह देखा नहीं गया। गुलाब जी जो एक दिन डोली में सजकर यहाँ आई थीं घर-बाहर सब कुछ जगमगा उठा था अनायास एक बीमारी के बाद दिवगता हो गयीं। सम्पूर्ण घर शोक के अन्धकार में डूब गया। यह सच है कि इस महाकाव्य में कथानक का सूत्र इतना ही है। फिर भी इस सूत्र के सहारे कवि का

जीवन उनकी दिवंगता पत्नी का जीवन नाते-रिश्ते में आए सगे-संबंधियों के जीवन का भी उल्लेख येन-केन-प्रकारेण हुआ है।

इस कृति को एक भाव-प्रधान महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है इस में जरा भी सन्देह नहीं है। कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा साहित्य में प्रधान मानी गयी है। बगिया बिन गुलाब की- भावयित्री प्रतिभा को उजागर करने की दिशा में कवि का एक सफल प्रयास है।

इस महाकाव्य के संबंध में एक बात यह भी कही जा सकती है कि महाकवि ने अपनी वेदना जो एक प्रकार से व्यक्तिगत है उसे इस रूप में अभिव्यजित किया है कि वह मात्र कवि की एक व्यष्टि की ही पीड़ा नहीं रह गयी है उस में पूरी समष्टि को समाहित कर लिया गया है। यह कवि की बहुत बड़ी सफलता है। व्यष्टि में समष्टि और समष्टि में व्यष्टि का एकाकार आज के युग की बहुत बड़ी माँग है। रामपुरियाजी ने इस तुला पर अपने को बहुत ही प्रांजल रूप में उतारा है। यहाँ पर यह उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा कि महाकवियों से प्रकृति-वर्णन की भी अपेक्षा की जाती है। स्थान-स्थान पर रामपुरियाजी ने भी जो प्रकृति का वर्णन किया है वह एक दृष्टि से अत्यत रोमांचकारी और मनोहारी भी है-

जीवन में तो हार-जीत का
      चलता रहता है क्रम
कभी दिवस की हँसी-खुशी है
      कभी रात का मातम।

अथवा

किन्तु न कोई जान सका है
      कैसे कब क्या आता
पतझड़ आई कहाँ कहाँ
      मधुमास अभी मुस्काता।

यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि महाकवि रामपुरिया ने प्रकृति-वर्णन एकनिष्ठ भाव से किया है। इसीलिए उनका प्रकृति वर्णन कहीं किसी प्रकार आरोपित नहीं वरन् स्वत स्फूर्त दिखाई पड़ता है। अन्त में एक बात और कह दूँ- महाकवि ने भाव और भाषा को जैसा मणि-कचन सयोग रखा है वह अत्यन्त आह्लादकारी है। जिस भाव को अभिव्यक्त करने के लिए जैसे भाषा चाहिए उसका ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत महाकाव्य है।

यथार्थत कृति पारिवारिक परिवेश में लिखी गयी है किन्तु ऐसा होते हुए भी यह एक सशक्त महाकाव्य है। यह हर दृष्टि से सग्रहणीय और पठनीय है।

वेदना ग्रस्त महाकवि के लिए उसका परिवार वैसा ही हो गया है जैसे बगिया बिन गुलाब की। किन्तु पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में रची गयी यह कृति अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। मुझे विश्वास है साहित्य के पाठक इससे विशेष अनुभूति का अनुभव करेंगे। साथ ही मेरी शुभाशसा है कि रामपुरियाजी अपनी साहित्य साधना में निरतर अग्रसर होते हुए माँ भारती के महामदिर में अनेकानेक कृति सुमनों का उपहार निरतर भेंट करते रहेंगे।

सम्मुख- राजेन्द्र आश्रम
दैन्हा गया-823001

गोवर्द्धन प्रसाद सदय

जय हे करूण विधाता! तेरी–
मू पर निशि–दिन जय हो!
सुख–दुख का भागी हो भूतल–
तेरी जय निश्चय हो!!

दुख से अन्तर विह्वल–कातर–
सिसक रहा है पल–पल
ऐसा गहन तिमिर है छाया–
मार्ग हुआ सब ओझल।

फिर भी तेरी जय है भू पर–
जय–जय ही मैं कहता
दुख का गहन पहाड़ हृदय पर–
धीरज धर कर सहता।

इतनी ही बस कृपा करो तुम–
मन में शक्ति अचल दो
दुख सहने का मुझ में अविचल–
धीरज–साहस–बल दो।

जय हे करुण विधाता तेरी–
निशि दिन अविरल जय हो
अन्तर के हर उत्पीड़न में–
तेरी जय निश्चय हो।।

मैं तो जनम–जनम का दुखिया–
दुख ही मात्र सहा है
कातर होकर दर्द हृदय का–
फिर भी नहीं कहा है।

जैसे भी हो सका हृदय पर–
हँस–हँस कर सब झेला
आफत के हर अँगारे से–
प्रतिपल–प्रतिक्षण खेला।

कोई शिकन न मुँह पर आई—
तन पर नहीं थकावट
किसी दूसरे को आने दी
कभी न दुख की आहट।

जो भी आया स्वय उठाया—
दु ख भाग्य का भारी
हिम्मत से फिर की है मैंने—
आगे की तैयारी।

पीछे मुडकर कभी न देखा—
कैसी विपद पडी थी
कभी न देखी अग्नि परीक्षा—
कितनी कठिन कडी थी।

बचपन मे ही पूज्य पिता की—
छाया छूट गयी थी
करूणामयी विमल माता की—
ममता टूट गयी थी।

पूज्य पिता औ' माता जी के—
रहा प्यार से वचित
फिर भी बढता रहा निरन्तर—
अपने पथ पर निश्चित।

हर क्षण पूज्य पिता का मन मे–
ध्यान विमल करता हूँ,
ममतामयी करूण माता को–
नित प्रणाम करता हूँ।

किसी तरह इस दुख को सहकर–
अपना समय बिताया
जो भी भार हृदय पर आया–
उसको सहज उठाया।

कभी किसी ने मुझे कहीं भी–
देखा कभी न कातर
नहीं किसी से कहा हृदय मे–
दुख का कैसा सागर?

पूज्य पिता सौभाग्य विमल थे–
सभी गुणो के आकर
माता जी भी परम हुलासी–
धर्म–भाव की सागर।

खोकर इनको क्या बीता था–
कैसे किसे बताता ?
बीत रहा जो मेरे मन पर–
अपने ही समझाता।

इनके रहते सुख ही सुख था–
घर सब भरा–पूरा था
कोना–कोना जगमग करता–
स्वर्णिम दीप धरा था।

लेकिन इनके जाते ही सब–
स्वय विलीन हुआ था
सब कुछ पाकर भी मैं जग मे–
सब से दीन हुआ था।

मन रोता विपन्न बना–सा–
तडप–तडप उठता था
सुख का कोई तत्व हृदय के–
पास नहीं सटता था।

अब भी माँ की याद सताती–
रह–रह हृदय दहकता
काश अगर वो रहतीं तो फिर–
इतना नहीं सिसकता।

उनकी ममता के कर मेरे–
मस्तक पर ही होते
देख न सकती थी वे मुझको
फूट–फूट कर रोते।

दयामयी वो बडी करूण थी—
उनके भाव विमल थे
धर्म—भाव के प्रतिपल पोषक—
उनके अन्तस्तल थे।

जो भी याचक मिला सामने—
जो चाहा दे डाला
उनके दान—कर्म का सचमुच—
फैला था उजियाला।

जो भी दीन—दुखी आता था—
उसका दु ख मिटाती
अपने चाहे जो भी बीते पर—
सब मे खुशी लुटाती

माता का मातृत्व उन्हीं मे—
था साकार हुआ—सा
विपदा मे उनका कर रहता—
था पतवार हुआ—सा।

भारत की सच्ची नारी की—
ममता—स्नेह भरी थी
धर्म—भावना के पालन मे—
रहती बहुत कडी थी।

ऐसी माता को पाकर सुत–
धन्य–धन्य हो जाता
उनके रहते सुत पर कोई–
सकट कभी न आता

दान–धर्म तो सहज रूप मे–
वर्तमान था उनमे
आतिथ्य भाव का अन्तरतर से–
ध्यान–मान था उनमे।

आज नहीं वो खिन्न हृदय है–
तडप–तडप मन उठता
गहन तिमिर को पार करूँ–
सयोग नहीं कुछ जुटता।

उनके आले पर सिर धर कर–
मन का सुख हूँ पाया
जब–जब दुख घिरा है उनकी–
स्मृति ने धैर्य बँधाया।

दया करो हे दयामयी नव–
शक्ति हृदय मे भर दो
विपदाओ को हँस–हँस झेलूँ–
मुझ को ऐसा वर दो।।

मेरा था परिवार बडा-सा—
        साधन सुख था पूरा
सुख के तत्व उपस्थित थे सब—
        कुछ था नहीं अधूरा

हीरालाल पितामह मेरे—
        कर्म परायण मानव
करते थे उद्योग स्वय ही
        सभी तरह के अभिनव।

उनके रहते घर की लक्ष्मी–
पल–पल खूब बढ़ी थी
कुल का गौरव और प्रतिष्ठा–
हर क्षण बढ़ी–चढ़ी थी।

इनके यश की गाथा अब भी–
जन–जन हैं दुहराते
इनका था जो भाई–चारा–
अब भी लोग सुनाते।

ऐसा था अपनत्व कि सब को–
साथ बिठाकर खाते
भिक्षुक जन को अपने हाथा–
भर–भर पेट खिलाते।

जो भी याचक आते दर पर–
कभी निराश न होते
खोज–खोज कर वस्तु काम की–
अपने स्वय सँजोते

ऐसे कुल मे जन्म ग्रहण कर–
किसको खुशी न होगी?
उनको क्या पर जिसकी हिम्मत–
कुठित है या रोगी।

एक तरफ अपने कुल की सब–
गाथा बडी चरम है
और दूसरी ओर हृदय का–
रोदन भी क्या कम है!

माता और पिता की छाया–
से मैं वंचित होकर
पितामही की ममता से ही–
पूरित था मैं भू पर

श्यामा बाई धाय–माय थी–
निर्मल सब गुण वाली
उसने हर क्षण करूणा से भर–
मेरी की रखवाली।

बढा समय के साथ चला मैं–
अपना पांव बढाता
मन मे नहीं किसी भी क्षण मे–
कभी उदासी लाता।

कढता था हर क्षण जीवन का–
अपने मोद मगन से
जो भी आता काम हृदय से–
करता खूब लगन से।

अद्भुत-अद्भुत गाथा कुल की-
लोग मुझे कह जाते
बड़े साहसी लोग यहाँ थे-
सब के सब बतलाते

महल सरीखे भारी घर मे-
गोधन खूब भरे थे
लोग-बाग सब खूब भरे थे-
सभी तरह निखरे थे।

लाल सुर्ख दुलमेरा पत्थर-
से ही महल बनाया
शिल्पकार बालू चलवे ने-
इसको खूब सजाया।

इसे देखने दूर-दूर से-
अब भी आते प्राणी
इसकी नक्काशी है अद्भुत
रग-छटा लासानी।

भैरो औ मेघसिह ठाकुर-
का है नाम अभी भी-
भूल न पाते इनकी हिम्मत
कोई यहाँ कमी भी।

एक बार था प्लेग वहाँ पर—
महारोग—सा छाया
बीकानेर सब छोड चले थे—
सबका मन भरमाया

ठाकुर भैरोसिह हृदय से—
तनिक न पर घबडाये
दादाजी को कहा जोर से
हम क्यो बाहर जाये?

सभी गये वे रहे अकेले—
निर्भय डटे वहीं पर
दादाजी भी मोह मगन थे—
ऐसे जन को पाकर।

थे भगवाना राम जाट भी—
जीवट के ही प्राणी
उनकी भी है गाथा सबको—
अब भी याद जबानी।

एक बार आबू पर्वत पर—
आये दीप जलाने
शान्ति विजय सूरीश्वर मुनि के—
पावन दर्शन पाने।

वहाँ अतुल हिंसक जीवों से—
सब-के-सब घबराये
किन्तु इन्होंने ही फिर सबको—
मन में धैर्य बँधाये।

डटकर भगवाना जी ने—
थी तलवार उठाई
पूरी रात रहे जगते ही—
नींद न पलभर आई।

मुनिवर की भी कृपा रही थी—
सुख से सब कुछ बीता
डरे न बच्चे महिलाएं भी
हुई नहीं भय-भीता।

जो भी थे वे सब विशेष थे—
मानव थे सब पहले
कभी मानते भिन्न नहीं थे—
जो भी कोई कह ले।

यही मिला परिवेश मुझे था—
जो सम्पन्न सबल था
भ्रातृ-भाव अपनत्व चतुर्दिक—
जीवन का सम्बल था।

खास महरूए मेघ पुरोहित--
रहते सदा डटे थे
एक--एक प्राणी सब अपने--
बनकर साथ सटे थे।

कोई भी था भेद न उनमे--
अपने से सब लगते
वश बढे यश कीर्ति बढाये--
भाव सभी मे जगते।

यही एक ध्रुव--तारा था औ--
इसी लक्ष्य पर बढता
आया हूँ मैं यहा निरतर--
बाधाओ पर चढता।

लेकिन अपना भाग्य कहो मैं
किसको आज बताऊँ।
सब कुछ पाकर शेष नहीं कुछ--
किसको मैं समझाऊँ।

सत्य सदा सतो की वाणी--
धन से शान्ति नहीं है
इससे बाहर उसे ढूँढना--
कोई भ्रान्ति नहीं है।

वह सब गौरव यश जीवन का—
सपना—सा ही लगता
वर्तमान के क्षण मे उससे—
क्लेश हृदय का जगता।

क्या था वश सुयश था कैसा—
लेकिन क्या परिणति है
आज झाँक कर कोई देखे—
मन की कैसी गति है?

धन्य विधाता सब कुछ देकर—
दुख भी साथ दिया है
मैं क्या जानूँ, तुमने कितना
क्या उपकार किया है?

सिसक रही है मन की पीड़ा—
वर्तमान के क्षण मे
घायल—सा मैं पड़ा हुआ हूँ—
अपने जीवन—रण मे।

लेकिन है विश्वास तुम्ही सब—
सहने का बल दोगे
पार करोगे तुम्हीं तुम्हीं फिर
अग्नि परीक्षा लोगे।

मैं तो बस कठपुतली भर हूँ—
दिखती राह नहीं है
चाह तुम्हारी पूर्ण रहे कुछ—
मेरी चाह नहीं है

इतनी भर ही इच्छा मेरी—
मुझको वह सम्बल दो
तुम्हे बिसारूँ कभी न पल भर
मन मे इतना बल दो।

दु ख का पारावार मिला जो—
उसको कैसे झेलूँ?
साहस दो इस वज्रपात को—
अपने दृग मे ले लूँ।

चाहे जग विपरीत रहे मैं—
गीत हृदय से गाऊँ
सुख मे दुख मे— हर क्षण तेरे—
पग मे शीश नवाऊँ।।

तृतीय

मैं हूँ अपनो का विश्वासी—
सबको प्यार किया है
जीवन के हर पग पर मैंने—
नूतन पाठ लिया है।

मेरे पथ पर सदा कुहासा—
मैं नित विघ्नो मे हूँ,
अपनी पूज्या माता जी का—
अतिम सुत भी मैं हूँ,

अग्रज श्री जयचन्द लाल जी—
रतन लाल जी भाई
और तीसरा मैं हूँ जिस पर—
दुखद घटा है छाई

लेकिन अग्रज आशिष देते—
हैं नित शुभ्र वचन से
मेरा वे कल्याण चाहते—
अपने निश्छल मन से

उनके सम्मुख हम सब तो हैं—
मात्र अभी भी बच्चे
इसीलिए करुणा दिखलाते—
अपने मन से सच्चे

दो बहनो मे बडी जतन जी—
बाई नहीं रही है
और दूसरी सूरज बाई—
ने भी विपद सही है

इनके पति भी हुए दिवगत—
इन पर भी दुख छाया
कठिन घडी मे सदा इन्होने—
भी है धैर्य दिखाया

माता जी का निधन हुआ तब–
मन पर पत्थर धर के
पूज्य पिता फिर मासीजी को–
लाये शादी कर के।

पेपा देवी मासी जी हैं–
निर्मल स्नेहमयी–सी
करुणा–पूरित मन है उनका–
ममता मातृमयी–सी।

अपने मित्र हितैषी भी नित–
मुझे सान्त्वना देते
दुख को तनिक घटाने मे वे–
कसर नहीं कुछ लेते।

लेकिन ऐसा वज्र पडा है–
इतना भार गहन है
तन तो हुआ निढाल ध्वस्त–सा
जर्जर पूरा मन है।

आगे क्या अब ओर घटेगा–
समझ नही कुछ पाता
सूच्यभेद घन–अन्धकार मे–
हृदय सदा घबडाता।

जब भी ऊषा नभ मे आती–
उससे ही नित कहता
देखो जीवन–रश्मि–दायिनी–
क्या–क्या हूँ मैं सहता।

सध्या भी जब भू पर आती–
उसको शीश नवाता
अपने दिल के हरे–हरे–
घावो को उसे दिखाता।

दिन मे औ' रजनी मे भी कुछ–
चैन न मुझको मिलता
क्षण भर को भी कुम्हलाया–सा–
सुमन न मेरा खिलता।

जो भी हो पर यही याचना–
सब से ही मैं करता
सब सहने का बल अन्तर मे
निशि–दिन रहे उमरता।

बीकानेर सदा ही मेरे—
मन मे रहा जगा है
सभी तरह यह मेरे दृग को—
सुन्दर सदा लगा है

इसका कण—कण मेरा परिचित—
सब कुछ है पहचाना
इसकी हवा और पानी को—
बचपन से ही जाना।

इसी भूमि पर बढ़कर मैंने—
की है सब मनमानी।
इसके कण–कण पर बिखरी है—
मेरी भरी जवानी।

लोग–बाग भी जो हैं मिलते—
अपने सब निश्छल हैं
एक–दूसरे से मिलने को—
रहते सदा विकल हैं।

पूर्णचन्द्र जी गर्ग पूज्य हैं—
गुरुवर मेरे मन–से
भाषा–ज्ञान सिखाया गुरु ने—
मुझको बडे जतन से।

शिवकाली सरकार स्वय ही—
ऑग्ल–ज्ञान देते थे
ये सब गुरुजन सदा हृदय से—
मुझे मान देते थे।

डाक्टर श्री अमरेश स्वय ही—
मुझ पर स्नेह दिखाते
अपने स्नेह–पुञ्ज का मुझ पर—
रहते जल बरसाते।

थे बडेर श्री आसकरण जी–
मन से पावन निर्मल
मेरे स्वजनो की टोली के–
मूर्ति धवल औ निश्छल।

एक कीमती हार कभी था–
खोया कहीं अचानक
दादा जी ने डॉट सुनाई–
खोज थके सब घर तक।

लेकिन इनके मुँह पर कोई–
शिकन न क्षण भर आई
ये निर्दोष कभी भी इनकी–
ऑख नहीं सकुचाई।

आखिर मिला तो दादा जी ने–
इनसे माफी मॉगी
पहले के ये निश्छल सज्जन–
कितने थे अनुरागी।

पुन मिले सब जैसे मानो–
कुछ भी नहीं हुआ था
देख सभी अचरज करते थे–
ऐसा कहीं हुआ था ?

इनके लड़के भँवर लाल जी–
बड़े सुहाने लगते
इनमें भी सौहार्द भाव ही–
रहते हैं नित जगते।

सुन्दरलाल सेठ भी मेरे–
मित्र आज जीवन में
हर सुख–दुख में साथ रहे हैं
अपने निर्मल मन से।

जब भी कोई विपद पड़ी है–
आकर धैर्य बंधाये [illegible]
अपनी निश्छल [illegible]
जी के [illegible]

स्वतत्रता सेनानी गगा—
कौशिक जी की झॉकी
रतन लाल जी वाहन चालक—
अच्छे थे तैराकी।

इनके सग हम साथ—साथ ही—
तैराकी थे करते
पानी मे हम मार डुबकियॉ—
गिरते और उभरते।

पडित वर श्री कृष्ण कान्त जी—
श्री रामानन्द जी खन्ना
इनके कृपा—भाव से ही तो—
रहता हूँ मै स्वस्थ बना।

गोवर्द्धन प्रसाद 'सदय जी मेरे—
साथी बने हुए हैं
योग्य—गुणी औं सहज प्यार के—
साथी चुने हुए हैं।

धनजी कुम्भा औं भगान जी—
सदा समर्पित रहते
बागा धोबी मनसुख मोची—
भी सब अपने करते

गियो सदीक औ' छोड़ गई—
मेघ पुरोहित मिलते
बालू सुथार सा फटे हुए दिल—
अपने ही हैं सिलते

गगन भँवर औ' गौरीशंकर
को मैं कैसे भूलूँ,
बदरी औ' परयाग सरीखे—
इनके मन को छू लूँ,

श्री भगवान दास की भरे—
फूल वे बिखर रहे हैं
अपनों के सब भाव हृदय में—
इनसे प्रकट रहे हैं

शिखर चद सेठिया और हैं
माणक चन्द जी मेरे
अमरचन्द जी और झवर जी—
मिलते सॉझ—सवेरे

बन्धु जेठमल और स्वय श्री—
अजयपाल कोठारी
छत्तर कठोतिया अपने नेही—
भवर लाल कोठारी।

कोठारी श्री विजय सिह जी—
दु ख बॉट लेते हैं
बडी कठिन घडियो मे खटकर
सब सुधार देते है।

इसी तरह सब ओर हमारे—
बन्धु अनेको मिलते
लेकिन जिन म घाव लगे हैं—
सुमन नहीं वे खिलते

शाम—सबेरे टीस हृदय मे—
रह—रह सदा उभरती
पल भर थमती ऑख न मेरी—
रहती सदा उमडती

किससे कहूँ हृदय में मेरे—
    कैसा दर्द समाया
महाकाल के हाथों मैंने—
    सब कुछ आज गँवाया

फिर भी मेरे बन्धु हितैषी—
    जीवन के सम्बल हैं
टूटे मन औ जर्जर तन के—
    वे ही बल सम्बल हैं।

उनसे भी है यही याचना—
    बादल कुछ हट जाये
गुरु मे शक्ति तनिक दे ऐसी—
    रात-स्यात कट जाय।

हम मानव तो अन्य तत्व से—
भी हैं कितने निर्बल
इसके इंगित पर आश्रित है—
सबका जीवन–संबल।

कौन कहाँ डाली टूटेगी—
जान न कोई पाता
किसे पता है ग्रास बनाने—
काल किधर से आता।

जब तक काल नहीं आता है—
अपना साज सजाले
डाल–डाल पर फूल खिलाले—
बाजा खूब बजाले।

[illegible] आता है [illegible]—
[illegible] नहीं [illegible]
[illegible]—
[illegible]।

इनके अपने जौहरिचंद जी–
विजयचंद जी भाई
धनपत जी भी वय के छोटे–
आते ले अरुणाई।

पाँचो बहन बडी गुणी है
निर्मल और सुघर है
पारस्परिक प्रेम है उनमें–
पावन और मधुर है।

मात पिता की जब गुलाब थी–
माता का देहान्त हुआ
विह्वल पहा था घर भर पूरा–
विधि महा दुर्दान्त हुआ।

कच्चा ही वय था परिणय मे–
जब हम आन बँधे थे
दो शरीर जब एक हुए थे–
निर्मल प्राण बँधे थे।

बडी खुशी छाई थी भू पर–
मन मे मोद भरा था
जहाँ दृष्टि जाती थी लगता–
सौरभ मूर्त्त खडा था।

ऐसा था आनन्द कि जिसका–
कहना बडा कठिन है
जिसको कल्मष तनिक न छूये–
तिलभर नही मलिन है।

दिशा–दिशा मे खुशियो का ही–
वन्दनवार तना था
मन से भी सौन्दर्य अनूठा–
तन का निखर बना था।

कलि–गुलाब थी जिससे मेरी–
बगिया महक उठी थी
रूप–रग–लावण्यमयी छवि–
उन्मद चहक उठी थी।

इनके अपने जौहरिचंद जी—
विजयचंद जी भाई
धापता जी भी वय के छोटे—
आते ले अरुणाई।

पाँचों बहनें बड़ी गुणी हैं
निर्मल और सुघड़ हैं
पारस्परिक प्रेम है उनमें—
पावन और मधुर है।

सात दिनों की जब गुलाब थी—
माता का देहान्त हुआ
सिराकर पन था घर भर पूरा—
विपद महा दुर्दान्त हुआ।

पूज्य राजाञ्ची माणकचन्द जी–
की यह अनुपम बाला
सदा नवोदित सूर्य विभा–सी–
फैलाती उजियाला।

घर मे आई लगा कि जैसे–
हृदय मुखर हो आया
घर का चप्पा–चप्पा मानो–
स्वागत मे मुस्काया।

अजब उमग रही थी छाई–
हृदय लहर लहराई
आज बताना बडा कठिन है–
खुशी कहाँ से आई।

कितनी खुशियाँ बिखर रही थी
कैसे आज बताऊँ?
व्रण को और कुरेदूँ अपने–
अपना दर्द बढाऊँ?

पता नही था यह दिन भी अब–
मुझे देखना होगा
जले हुए अरमानो को अब–
मुझे परखना होगा।

बहुत दिनों तक साथ रहे थे—
साथ-साथ सब झेले
रहे न उनचालीस बरस तक—
ऐसे कभी अकेले।

दुख भी आया सुख भी आया—
किन्तु नहीं कुछ जाना
सीख लिया था लहर-लहर से—
बढ़कर होड़ लगाना।

किन्तु आज विपरीत हुई हैं—
नियति-चक्र की घड़ियाँ
मन विषण्ण लगती हैं जैसे—
पड़ी कठिन हथकड़ियाँ।

भूल न पाता वे घड़ियाँ जो—
सुख से बीत रही थीं
पता नहीं था शान्ति हृदय की
क्षण—क्षण रीत रही थी।

बडे मौज मे घूम रहे थे—
जग से नयन बचा के
देखा था कश्मीर सुहाना
साथ—साथ हम जा के।

झीलों का व नया नजारा—
फूलों का वह खिलना
फूलों पर भौंरों का गुंजन—
बिछुड़-बिछुड़ कर मिलना।

डाल-डाल पत्ती-पत्ती पर—
हरियाली छितराई
लाल-लाल रोवों से आनन—
पर मादकता छाई।

साथ-साथ हम जगह अनेकों—
घूम-घूम कर आये
जहाँ कहीं सौन्दर्य मिला हम—
आँखों में भर लाये।

यात्रा का क्रम खूब चला था–
मन रहता अकुलाया
नयी–नयी जगहो पर जाने–
का था शौक समाया।

जहाँ कहीं जाना होता था–
साथ–साथ थे जाते
सुख–दुःख के झोको मे दिल को
साथ–साथ बहलाते।

ऐसा हुआ नहीं था अब तक–
अलग–अलग हम जाये
छोड किसी को किसी दिशा मे–
अलग पथ अपनाये

लेकिन बोलो आज अकेले–
कैसे चली गई हो
अपने ही या कुटिल नियति के–
द्वारा छली गयी हो?

जो भी हो परिणाम एक है–
रोता हूँ अकुला के
किन्तु सान्त्वना तनिक न मुझको
देती हो तुम आ के

पहले तो बस तनिक पीर जो—
जगी कि तुम आती थी
दर्द भरे घावो को हर क्षण—
तुम ही सहलाती थी

आज अनोखा प्यार तुम्हारा—
मन को काट रहा है
दर्द बढा है किन्तु न कोई—
दुख को बॉट रहा है

पहले का सब कुछ है लेकिन—
तुम ही एक नहीं हो
सूना सरगम व्यर्थ भुवन का—
जिसमे टेक नहीं हो

जो भी हो तुम करूणा की बस—
एक किरण बरसाओ
जलते हुए हृदय को क्षण भर—
शीतल तो कर जाओ

कैसे भला सहूँगा ऐसे—
दुर्वह भार अकेले
शून्य कक्ष मे मैं हूँ, बाहर—
लगे हुए हैं मेले

झर–झर बरस रही हैं ऑखे–
ऑसू तनिक सुखा दो
सूझ रहा कुछ नहीं तिमिर मे
पथ तो कुछ दिखला दो।

रात दिवस की तरह जिन्दगी–
अपने क्रम से चलती
सुबह सूर्य की किरणे जगतीं–
सध्या को खुद ढलती

जीवन में ही हार–जीत का–
चलता रहता है क्रम
कभी दिवस की हँसी–खुशी है–
कभी रात का मातम।

किन्तु न कोई जान सका है—
कैसे कब क्या आता
पतझड आई कहॉं कहॉं—
मधुमास अभी मुस्काता।

नियति स्वय ही इस रहस्य को—
सदा छिपाये रहती
कोई इसको भेद न पाता—
अगम बनाये रहती।

इसीलिए जब दिन खिलता है—
अन्तरतर लहराता
वर्तमान के राग–रग मे—
भूल भविष्यत् जाता।

जब विवाह था हुआ हृदय मे—
ज्वार खुशी का आया
खिला–खिला कर फूल अनोखे—
बगिया खूब सजाया

एक निश्चय से हम दोनों ने—
खूब सजाया आँगन
[illegible] फूल खिलाये सहसा—
[illegible] उठा था [illegible]

था परिवार बढा पर मन की—
खुशी न कम हो पाई
नये—नये रगो मे सजकर
नव उमग लहराई

एक पुत्र औ तीन पुत्रियॉ—
लगी खेलने घर मे
गॅूज उठी किलकारी उनके—
अपने—अपने स्वर मे

बडा मोद मे दिन कटता था—
देख न कोई पाता
रजनी का तम भी अनजाने—
ऑखो मे खो जाता

पुत्र प्रदीप हुआ था तब की—
बात न कोई पूछे
गॅूगे के गुड जैसी मन मे—
खुशी समाई बूझे

प्रभा हुई थी फिर यह प्रतिमा—
उस पर आई प्रमिला
इन्हे देख हॅसती थीं वह—
बनकर स्नेहिल विमला

ये सताने चार रत्न थी—
        घर गूँजित रहते थे
मानस के सरसिज खिल—खिलकर—
        मन—ही—मन कहते थे

इन्हे देखकर ताप हृदय का—
        कभी न हमने जाना
कैसी होती पीडा मन की—
        इसे नहीं पहचाना।

मन था इनमे हम सब भी तो—
        इनके सग रमते थे
जो तरग थे मेरी खातिर—
        हिम गिरि से क्या कम थे।

उस दिन कभी न सोचा था यह—
        खुशी न रहने वाली
जिन होठो पर हँसी वही है—
        स्वय बिछडने वाली।

री गुलाबो तू माता थी—
        ये नन्हे फूल खिले थे
केवल मुझे नहीं तुझको भी—
        ये आनन्द मिले थे।

इन्हे छोडकर इतनी जल्दी—
कैसी तुम्हे पडी थी
हम से ज्यादा तुम पर इनकी—
ऑखे गडी गडी थी

बोलो! क्यो निस्सग हुई तुम—
इस जीवन से ऐसे
लेकिन क्योकर भूल सकेगे—
तुम्हीं बताओ कैसे?

मन विह्वल है तडप रहा है—
दुख की घटा घिरी है
सुख की कोई बात न उसकी—
ऑखे स्वय फिरी हैं

तुम्हीं बताओ बच्चो को मैं—
कैसे भला सँभालूँ
उजड गया जो घर अब कैसे—
उसको पुन सजा लूँ

है विश्वास तुम्हीं बल दोगी—
दोगी इतना साहस
सब कुछ जिससे झेल सकेगा—
हम सब का मन—मानस।।

अष्टम्

उस दिन की भी मुझे याद है—
कितनी खुशी भरी थी
तुम भी सूर्यमुखी जैसी बन—
सम्मुख विहँस खड़ी थी।

पुत्र प्रदीप बना जब दूल्हा—
बात अनोखी ही थी
प्रभा और प्रतिभा की शादी—
धूम-धाम से की थी।

तुम भी सजी-धजी लगती थी—
घर था स्वर्ग सलोना
विहँस उठा था कण-कण सजकर—
घर का कोना-कोना।

सुमतिलाल बाँठिया प्रभा को—
मिले सलोने सहचर
प्रतिभा को संतोष कोठारी—
जीवन साथी सुन्दर।

दोनो जमाता पर तुमने—
पूरा ध्यान दिया था
सदा उन्होने भी तो तुमको—
माँ का मान दिया था।

घर मे खूब बजी शहनाई—
नयी बहू जब आई
हँसी-खुशी से तुम चलती थी—
अपने मे न समाई।

कितनो को क्या नहीं दिया था—
उस दिन तुमने जी भर
जो आता था जाता ही था—
तुम से ही कुछ लेकर।

बडी उमग भरी थी तुम मे—
तुम भी थी दीवानी
घर मे आई सुधा नवेली—
सब के दृग की रानी।

जेठमल सुराणा जी हैं—
पिता सुधा के अनुपम
भँवरी बाई दयामयी माँ—
प्रेम—भाव से पुरनम।

शिखरचन्द जी योग्य मधुर हैं—
भाई सुधा बहू के
सभी तरफ था मोद बिहँसता—
सब के मन को छू के।

प्रदीप बिहँसता उसे देखकर—
तुम भी हँस देती थी
मानो उनकी सभी बलैया—
अपने पर लेती थी।

घर मे नूतन रग खिला था—
सब थे मगल गाते
शुभ्र कामना देने तुमको—
लोग—बाग थे आते।

दिन–दिन भर तुम बडे जतन से–
सबको खूब खिलाती।
जिसे चाहिए था जैसा जो–
देकर विदा कराती।

बाजे नित बजते थे घर मे–
बजती थी शहनाई
हँसी–खुशी औ' राग–रग की–
समॉ सदा थी छाई।

बेटा–बेटी और पतोहू–
सजी–धजी थी बगिया
कली–कली के रूप–रग से–
महक उठी थी बगिया।

जो भी कुछ कहता लगता था–
कोकिल बोल रही है
हर वाणी मे लगता जैसे–
अमृत घोल रही है।

जीवन का आनन्द अलौकिक–
पहुँचा था सीमा पर
दिशा–दिशा मे सौरभ उडता
लहर रहा था सागर।

वैसा वह आनन्द भुवन मे—
नहीं कभी फिर आया
नहीं किसी ने कभी आज तक—
वैसा रूप दिखाया।

हर क्षण था वह मुग्ध मनोहर
जीवन रास बना था
सिर पर मानो स्वर्गपुरी का
मादक गध तना था।

याद आज जब करता है मन—
तुम दृग मे आ जाती
एक—एक क्रम मे बस तेरी—
दृष्टि मोहिनी आती।

हम तुम दोनो बहुत दिनो तक—
मिलकर बाते करते
बीत गयी खुशियो की वैसी—
छवि को रहे पकडते।

नही पता था एक दिवस तुम—
होगी दूर नयन से
अलग कभी तुम हो जाओगी—
अपने ही परिजन से।

बोलो कैसे आज अकेले—
इतना भार सहूँगा
भीड भरी दुनिया मे कैसे—
यह एकान्त सहूँगा।

सब को देती थी तुम मुझ को—
भी कुछ दान नया दो
सहूँ सभी कुछ मेरे मन को—
पत्थर जरा बना दो।।

नियति बली है सुख ही सुख बस—
कभी न रहने देती
चम चम करती हुई किरण का—
अंश स्वयं ले लेती।

सिर पर सूरज आ जाता जब—
ढलने का क्रम होता
रोके अवनति कभी न रुकती—
निष्फल सब श्रम होता।

यही हुआ जब हँसी–खुशी का–
समय निखर कर आया
एक–एक कण भू का बिहँसा–
कोर–कोर हर्षाया।

एक चरम सीमा थी मन का–
दोनो छोर भरा था
रन्ध्र–रन्ध्र आनन्द समाया–
पुलकित रोर भरा था।

तभी अचानक इस कुटुम्ब पर–
वज्रपात–सा आया
महाकाल ने रूप भयानक–
अपना यहाँ दिखाया।

थी प्रदीप की नयी जवानी–
कच्ची उम्र मिली थी
अभी–अभी होठो के ऊपर–
बाछे तनिक खिली थी।

देख न पाया था इस जग को–
जग की मादकता को
विरह–मिलन के हिलकोरो पर–
उठती आकुलता को।

नयी बहू थी लेकिन उसको–
कहाँ निहार सका था
हृदय–पटल पर झाँकी उसकी–
नहीं उतार सका था।

जी भर कर वह नहीं अभी तो–
कुछ भी देख सका था
प्रेमिल मन पर खींच न अब तक
कोई रेख सका था।

दो दिल की सब बाते मन मे–
पडी अधूरी ही थी
चौंक रही आँखो मे लज्जा–
हिरणी जैसी ही थी।

किन्तु काल के आगे इसका–
कोई मान नहीं है
समय और असमय की उसको–
कुछ पहचान नहीं है।

चाहा बहुत मगर वह मेरा–
लाल नहीं बच पाया
पलभर मे ही मैने अपना–
सब सौभाग्य गँवाया।

वज्रपात था हम पर भीषण–
रग–रग तक आहत थे
शून्य–चेतना हुई हृदय की–
सब–के–सब जडवत् थे।

अधकार था घिरा दृगो मे–
नहीं सूझ कुछ पाता
पता न था मझधार पडा यह–
यान किधर को जाता।

वैसे मे भी मुझे सहारा–
तुमने मात्र दिया था
उठती हुई लपट को तुमने–
कुछ तो शान्त किया था।

री गुलाब! पर आज तुम्ही जब–
बिछुडी शेष रहा क्या?
नही प्राण ही तन मे बाकी–
फिर अवशेष रहा क्या?

बोलो कठिन घड़ी में मुझको—
कौन सहारा देगा?
डूब रही मेरी नैया को—
कौन किनारा देगा?

इतना बल दो किसी तरह—
मँझधार पार कर जाऊँ
महाशून्य से तुम्हें बुलाने—
को आवाज लगाऊँ।।

दशम्

पुत्र–शोक सतप्त हृदय था–
कठिया तपस्या की थी
कष्ट–साध्य व्रत सकल साधना–
सब समेट कर ली थी।

बेला तेला और अठाई–
कई उपवास किये थे
वर्षी–तप कर जन–जन तक को
सब उपहार दिये थे

कई साधना पूरी की थी—
रहा न कुछ भी बाकी
मन का दीप अखण्ड जला कर—
काटी रात अमा की

नवाणु—यात्रा पालीताणा—
मे व्रत पूर्ण किया था
धर्म—लक्ष्य—आचरण भुवन मे—
अपना बना लिया था

सिद्धाचल पर्वत पर जाकर—
सब व्रत नेम निबाहा
सदा रहा अवलम्बन जग मे—
धर्म—भाव मन चाहा

परमाचार्य श्री गणेश जी का—
ध्यान हृदय मे धर के
कार्य सभी करती थी मन से—
सुमिरन उनका करके।

पूज्याचार्य नानेश गुरु को—
सादर शीश नवाकर
कार्य—कलाप किया करती थी—
मन से ध्यान लगाकर।

पूज्य मुनि इन्द्रचन्द जी पर–
हर पल श्रद्धा रखती
प्रतिदिन उनका दर्शन करने–
को थी जाया करती–

कविवर श्री वीरेन्द्र मुनि को–
करती सदा नमन थीं
सभी साधु औ' साध्वियो को–
देती विनय–सुमन थी।

कान्ति मुनि श्री आदर से ही–
माता जी कहते थे
व्रत पचक्खाण करा कर वे
प्रेरित नित करते थे।

जहाँ–जहाँ जाती थी सतो–
को थी शीश नवाती
बडी प्रणति औ' विनयानत हो–
श्रद्धा भक्ति चढाती

सतो का आशीष इन्हे था–
सदा अहर्निश मिलता
धर्म–कर्म को छोड कहीं भी–
इनका हृदय न टिकता

मान्याचार्य सुशील मुनी औ'
श्री सौभाग्य मुनी को
भक्ति प्रकट करती थीं प्रतिपल
हल्का करके जी को

अपने गुरुजन की स्मृति में ही
ज्यादा समय बिताती
पूज्याचार्य यशोविजय जी
को भी भक्ति दिखाती

सब मुनियो औ' सतो से था—
इनका आत्मिक नाता
दैव शक्ति से रहता मन का—
कमल सदा मुस्काता

बडी—बडी विपदाओ मे भी—
प्रभु को भुला न पाई
इनके आनन पर रहती थी—
शक्तिमयी अरुणाई

तीर्थाटन पर जब जाती थी—
मन रहता हर्षाता
परम तत्व को छोड किसी का—
कथन न इनको भाता

घर मे रह निर्लिप्त भाव से–
अपना समय बितातीं
दान–मान सब देकर ही वो–
जीवन का सुख पाती

जहॉ कहीं जाती थी मैं भी–
साथ उन्हीं के जाता
उनकी करूणा थी जो मैं भी–
धर्म–भाव अपनाता

इसी तरह चित्रो मे उनकी–
जाग्रत रुचि रहती थी
एक–एक रेखा तक कोमल–
भाव प्रकट करती थी

घर की दीवारो पर अब भी–
उनकी कला टॅगी है
रोज निहार रहा हूँ, लेकिन
ऑखे नहीं थकी हैं

चित्र बनाये बहुत किन्तु अब–
मेरा चित्र बनाओ
जितना मुझ मे चित्रो मे भी–
उतना ऑसू लाओ

ऐसा है परिवेश कि हर क्षण—
याद तुम्हीं आती हो
री गुलाब! तुम धडकन मे भी—
कम्पन बन जाती हो

लगता है अब तीर्थाटन पर—
कैसे फिर जाऊँगा
ऐसे वहाँ अकेला जाकर—
सुख भी क्या पाऊँगा

रह—रह कर याद हृदय को—
करती विकल रहेगी
मेरे मन की भावुक धडकन—
पीडा और सहेगी

गुरू चरणो मे शीश नवाकर—
याद किया करता हूँ,
हर क्षण तेरा बिम्ब हृदय मे—
आँक लिया करता हूँ,

सूना जो परिवेश मिला है—
और गहन हो जाता
जब भी याद तुम्हे करता हूँ—
सँभल नहीं

मन कहता है क्याकर कोई—
वस्तु भला मिल जाती
प्राणो मे भी गेह बना जो—
स्यात् न रहने पाती।

मिल कर जो यो बिछुड चले यह—
कैसा विषम नियम है
यह उत्पीडन—क्रन्दन—ज्वाला—
जीवन का क्या क्रम है।

दीन बना कर मुझे नियति को—
कैसी शान्ति मिली है
मेरी पूजा के दर्पण मे—
प्रतिमा नहीं हिली है।

तुम्हीं बताओ शान्ति हृदय की—
आज कहाँ मैं पाऊँ
कौन इष्ट—आराध्य कि जिसके—
पग पर शीश नवाऊँ।

दया करो अब तुम ही केवल—
ज्योति नयी दिखला दो
धीरज से दृढ़ कष्ट सहूँ मैं—
पथ नया बतला दो।।

[illegible] 61।

फिर भी दैव बडा निष्ठुर है—
कैसा दिन दिखलाया
अनायास यह विपद शीश पर—
कैसे था मँडराया।

सहसा गिरी गुलाब धरा पर—
पक्षाघात हुआ था
महाकाल का समझो उन पर—
यह उत्पात हुआ था।

डाक्टर वैद्य हकीम बुलाये—
कोई काम न आया
देवों की भी विनती की पर—
कोई त्राण न पाया।

यह असह्य था किसी तरह हम—
नर्सिंग होम ले आये
उनतीस दिनों तक हम सब मिलकर—
थे इलाज करवाये।

डाक्टर दुर्गादास कोठारी—
प्रतिपल रह कर तत्पर
उन्हे बचाने की खातिर ही—
किय सभी कुछ जी भर।

किसी तरह अब दिन कटता था—
मन को रहे मनाये
किसी तरह हम हँस लेते थे—
दिल को कड़ा बनाये।

भगवत्–कृपा सदा सर्वोपरि—
मान यही हम चलते
अपने यों तो नहीं कुपथ पर—
पलभर कभी निकलते।

फिर भी दैव बडा निष्ठुर है—
कैसा दिन दिखलाया
अनायास यह विपद शीश पर—
कैसे था मँडराया।

सहसा गिरी गुलाब धरा पर—
पक्षाघात हुआ था
महाकाल का समझो उन पर—
यह उत्पात हुआ था।

डाक्टर वैद्य हकीम बुलाये—
कोई काम न आया
देवो की भी विनती की पर—
कोई त्राण न पाया।

यह असह्य था किसी तरह हम—
नर्सिंग होम ले आये
उनतीस दिनों तक हम सब मिलकर—
थे इलाज करवाये।

डाक्टर दुर्गादास कोठारी—
प्रतिपल रह कर तत्पर
उन्हे बचाने की खातिर ही—
किय समी कुछ जी भर।

इनकी पत्नी भी आ–आकर–
उन्हें देख जाती थी
मन पर दृढ अपनत्व भाव की–
खींच रेखा जाती थी।

डाक्टर श्री यशवत बाफना–
वहाँ सदा ही रत थे
डाक्टर भूपेन्द्र कोचर भी–
लगे वहाँ अविरत थे।

डॉक्टर ए पी चक्रवर्ती भी–
रहते थे सुधि लेते
अपनी विमल चिकित्सा पद्धति–
का बल ही थे देते।

किन्तु भाग्य का लेखा कोई–
तिल भर काट न पाया
गिरा बदन जो नहीं किसी ने–
उसको पुन उठाया।

सब प्रयास हो गया निरर्थक–
ऑख नहीं खुल पाई
चेतन–शून्य अवस्था मे ही–
उसने अवधि बिताई।

ऐसी थी बेहोशी कोई–
जान नहीं कुछ पाता।
शून्य विवर मे मानो अन्तर–
तडप–तडप रह जाता।

आखिर यह बेहोशी ही चिर–
निद्रा स्वय बनी थी
जीवन और मृत्यु मे यो तो–
बारम्बार ठनी थी।

अब क्या था? सब शेष हुआ था–
घर पर ही ले आये
चले यहॉ से ही मरघट को–
सब ने अश्रु बहाये।

जीवन और मृत्यु की घाटी–
कितनी छोटी लगती
जो मुस्कान अभी फूटी थी–
तुरत चिता पर जलती।

जो नि शेष कमी लगता था–
जीवन राख बना था
देख रहा दृग कभी बिहॅसता–
वह भी अश्रु सना था।

यह प्रगाढ़ निर्वेद कभी भी–
यो साक्षात नहीं था
इतना गहन हृदय पर पहले–
कुछ आघात नहीं था

री गुलाब! तुम चली गयी मैं–
रोक न तुमको पाया
सभी तरह अब दीन हुआ मैं–
पग–पग हूँ भरमाया

दुनिया बहुत बडी है लेकिन–
कुछ भी मुझे न देगी
मेरे दुख को किसी तरह भी–
हल्का नही करेगी

तुम्ही एक हो जिस पर मेरी–
आँखे टँगी हुई है
भ्रमित न होऊँ राह दिखा दो–
आशा लगी हुई है।।

आज न हो तुम लेकिन तेरी—
याद बहुत आती है
दृग के आगे बात पुरानी—
रह—रह आ जाती है

लाख चाहता उन्हे न ऐसे—
मन पर यो आने दूँ,
चली गयी जो दु खद घडी अब
उसको तो जाने दूँ,

लेकिन अपने वश की कोई—
बात नहीं हो पाती
दृग के सम्मुख दु खद झाँकियाँ
खडी सदा रह जाती

मर्मान्तक पीडा से मेरा—
रोम—रोम अकुलाता
नहीं चाहने पर भी फिर—फिर—
दृश्य वही आ जाता

चिकित्सा—गृह मे थी तुम सुनकर—
अपने जन जुट आये
सभी सगे—सबधी अपने—
मित्र सुने अकुलाये

एक पाँव पर खडे सभी थे—
अच्छी तुम हो जाओ
एक बार तो आँखे खोलो—
कह कर कुछ मुस्काओ

सदा राम सोहाग सिह था—
वाहन चालक तत्पर
जहाँ जिसे जाना हो जाता—
झटपट उनको लेकर।

इसी तरह सब लोग यहाँ–
हर क्षण डटे हुए थे
मेरे भावो से ही वे सब–
मन से सटे हुए थे।

दरवान उमाशकर औ' उपेन्द्र भी
हर क्षण बहुत विकल थे
मोहन औ' मगनी सेवगण–
सदा सभी विह्वल थे

कितनो को क्या कहूँ, सबो मे–
अपना भाव जगा था
मेरी कठिन घडी मे सबको–
ही आघात लगा था

बडी विपद थी मर्म–बेधनी–
पलभर चैन नही था
जन–जन मे ही व्यथा जगी थी–
जो भी जहाँ कहीं था

सुना जहाँ जिसने भी आया–
दु ख से कातर होकर
लगता था सब दीन हुए हैं–
अपना ही कुछ खोकर

ऐसा था सम्बन्ध तुम्हारा—
सब में दुःख जगता है
सबको जैसे अपनेपन का
दर्द जगा लगता है

अब तो मुझको यही शेष है—
पल–पल अश्रु बहाना
लगता मुझको ज्ञात मात्र है—
रोना और रुलाना।

कितनी कठिन हुई है घड़ियाँ—
सब कुछ कठिन–कठिन है
चैन नहीं रजनी मे मिलता—
दुःख के ही सब दिन हैं।

सब कुछ सहने की सीमा है—
यह कैसे सह पाऊँ
अपने दुर्दिन की यह गाथा—
कैसे किसे बताऊँ?

आज नहीं तो कल यह होगा—
लोग हँसेगे मुझ पर
सम्भव है कुछ करे ठिठोली—
मुझे देख कर कातर।

री गुलाब! फिर कैसे निज को–
मैं सामान्य बनाऊँ?
जाकर कहाँ कहो फिर कैसे
छिप कर अश्रु बहाऊँ?

एक आश बस यही कि मुझको–
थोड़ा–सा भी बल दो
रहूँ झेलता सदा अकेला–
इतनी भर हलचल दो।।

त्रयोदश

बीकानेर मधुर लगता था—
जब—तब तुम जाती थी
अपनो का अपनत्व वहाँ पर—
अविरल तुम पाती थी।

जब भी जाती जुट आते थे—
अपने और पराये
जो भी मिलते सब के सब ही—
रहते थे मन माये

कभी अगर अस्वस्थ हुई तो—
सब उपचार कराते
डॉक्टर श्याम नाथ जी मिश्रा—
धनपत कोचर आते।

डॉक्टर हेम सक्सेना आकर—
उचित दवा बतलाते
डॉक्टर बुलाकी दास सेवग भी
सदा देखने आते

इनसे अन्य बहुत थे ऐसे—
देशी पद्धति वाले
वे सब भी थे कुशल चिकित्सक—
तुम्हे देखने वाले।

डॉक्टर झवरलाल नाहटा—
बी सी राय स्वय थे
परिचर्या मे मगनी नायण—
कोई तनिक न कम थे।

सभी जनो की शुभ्र कामना—
निशिदिन हम पाते थे
सब कुछ बडा मधुर लगता था
जब भी हम जाते थे।

यह सब लगता एक स्वप्न था—
टूट गया अनजाने
दृष्य स्वय सब अश्रु बहाते—
जाने औं पहचाने।

बोथरा जेसराज जी भी—
पूर्ण समर्पित ही थे
श्री घींसा पहलवान भी हम से—
हिले–मिले ही थे।

अब लगता फिर मिल न सकेगा—
दृश्य पुरातन छूटा
अब तो सदा रहेगा अन्तर—
तर टूटा–का–टूटा।

कभी–कभी लगता है जाऊँ—
शायद दर्द कमेगा
कोई तो ऐसा होगा जो—
बॉट दर्द कुछ लेगा

विरह व्यथा का हाल जगत मे—
कोई जान न पाता
वही समझ सकता है जिसका—
पत्थर दिल हो जाता

यहॉ–वहॉ हिरणी–सा निशिदिन–
मन दौडा करता है
जो छवि दूर नयन से रहती–
उसको ही धरता है

वर्तमान पर तिलभर को भी–
कुछ विश्वास न रहता
बीत गया जो काल उसी का–
ज्वाला मे नित दहता।

और भविष्यत् की खातिर ही–
रहता है चिल्लाता
लेकिन भाव मधुर जो दिखता–
तुरत दूर हो जाता।

मृग–तृष्णा के जटिल बध मे–
जकडा अन्तरतर है
नीचे जलती हुई धरित्री–
जलता नभ ऊपर है।

इन दो सीमाओ मे ही तो–
सॉस घुटी रहती है
सॉसो के इस तन्तुवाय पर–
दृष्टि लुटी रहती है।

साँस नही तो दृष्टि कहाँ की—
सूना जग हो जाता
महाकाल के शून्य कोष्ठ मे—
अखिल विश्व खो जाता

सब अथाह मे पडे हुए हैं—
कोई थाह न मिलती
रि गुलाब! कब इस बगिया मे—
कली चाह की खिलती

एक तुम्हीं हो दृष्टि जहाँ पर—
थक कर भी थम जाती
इतना बल दो मर्म वेदना—
पलभर को कम जाती।।

बीकानेर तुम्हारा सचमुच—
था जाना—पहचाना
सदा तुम्हारे हित रहता था—
कोई मधुर ठिकाना।

इस धरती के एक—एक कण—
मे ही सॉस रमा था
इसके हर टीले—टीले पर—
तेरा नयन जमा था

यही तुम्हारा जन्म हुआ था—
खिलकर यहीं बढी थी
री गुलाब! तू इसी धरा की—
शतदल स्वर्ण मढी थी।

आज कदाचित जाऊँ तो यह—
धरती खुद पूछेगी
बोलो मेरी कुंठित जिह्वा—
तब क्या उत्तर देगी?

बालू के कण लिपट कहेगे—
भला अकेले आये
किसको फिर क्या कह पाऊँगा—
अपनी नजर छिपाये।

घर भर से आवाज पडेगी—
मुझको यही सुनाई
री गुलाब! तू गयी कहाँ है?
आज नहीं क्यो आई?

घर की ड्योढी चिहुँक उठेगी—
जैसे पाँव धरूँगा
जरा बताओ तब मैं किससे—
कैसे बात करूँगा?

एक–एक दरवाजा खुलकर–
मुझसे यही कहेगा
बोल अकेले बडे महल मे–
कैसे यहाँ रहेगा?

खिडकी औ' दीवार समूची–
मुझ पर चीख पडेगी
लज्जा से तब ऑख मींग कर–
अपने आप गडेगी

पुरजन–परिजन सब आयेगे–
कैसे किसे कहूँगा?
जरा बताओ दुर्बल मन पर–
कितना भार सहूँगा?

जन्म–भूमि की उस नगरी मे–
तुम को तो आना था
छोड सभी कुछ इतनी जल्दी–
भी यो क्या जाना था?

जाने के कुछ पूर्व वहॉ की–
एक छटा ले लेती
रूठ गई क्यो उससे वह थीं–
तेरी बडी चहेती?

लेकिन जब तक समय न आता–
साहस–बल कुछ भर दो
री गुलाब! मैं पूजा–घर मे–
जलूँ, आरती कर दो।।

फिर भी यहाँ अनेको ऐसे--
सज्जन भरे पडे हैं
कठिन घडी मे भी जो लगते--
आकर स्वय खडे हैं

अपनो का भी कुछ अभाव जो--
ज्ञात न होने देते
आफत मे भी अपना धीरज--
कभी न खोने देते।

जब तुम गयीं समझ लो कैसी
आफत रही भयानक
कैसी पीडा गहन हृदय मे--
उठने लगी अचानक।

घर का कोना--कोना मानो--
बडा भयावह लगता
ऊपर से कुछ दिखे न लेकिन--
मन मे ज्वार सुलगता

किसी तरह समझाया मन को--
मन समेट कर रक्खा
सभी तरह से कडा नियत्रण--
अपने ऊपर रक्खा

उनको बोलो नाम कहाँ से–
कोई भी दे पाये
अपने तुनुक दृगो मे वे भी–
ऑसू भर–भर लाये

इसी तरह यह नील गगन था–
दिशा–दिशा तक रोई
पहले जो उद्दीपन थी वह–
सारी सुषमा खोई।

फिर भी लेकिन शान्ति कहाँ है–
थमता ज्वार न मन का
मन विषण्ण उडता रहता है–
ऑधी मे ज्यो तिनका।

री गुलाब! अब तुम्हीं बताओ–
कैसे शान्ति मिलेगी?
ऐसी शक्ति कहाँ है किसमे?
शीतलता जो देगी।।

बच्चे घर मे सिसक रहे हैं–
मैं भी सिसक रहा हूँ,
कल तो हँसता हृदय कही था–
देखो आज कहाँ हूँ?

पुत्र–वधु कहती है– माँ सा–
बोलो कहाँ गयी हैं?
कैसे कह दूँ पुत्र जहाँ है–
वह भी वहाँ गयी है।

प्रमिला भोली यह अबोध है–
सिसक–सिसक रह जाती
अपनी मौन मुखाकृति से ही–
दु खडा सब कह जाती।

घर मे एक बचा हूँ मैं ही–
सबको जो कह सकता
औरो को हल्का करने को–
सब कुछ जो सह सकता।

घर मे ऐसा आज न कोई–
मुझको धीर बँधाये
पारावार उमडता रोके–
मन की पीर मिटाये।

सभी दबाते मुझको बोलो—
मैं अब किसको देखूँ,
री गुलाब! अब नहीं रही तुम—
रोकर जिसको देखूँ।

[illegible] बिगड़ी है आज परिस्थिति
नहीं सही जा सकती
[illegible] गयी जो अवधि अचानक—
लौट नहीं आ सकती।

जो हम भूले सामायोजन अब—
उसका दाम पड़ेगा
[illegible] भर ही हर दिन से—
उधार पड़ा रहेगा।

अन्तर–मुखी बनी ज्वाला को–
अन्तर मे ही बॉधो
अब तक जिसे न साधा था–
उसको ही अब साधो।

तभी लहर यह रुक पायेगी–
ज्वाला तभी थमेगी
महासिन्धु की लोल लहरियॉ–
तट पर तभी कमेगी।

बाहर से यदि हवा मिली तो–
आग और धधकेगी
कौन भला फिर कह सकता है–
सीमा लाघ न लेगी।

जैसा घाव हुआ है उस पर–
वैसी दवा लगाओ
छेड–छेड कर तारो को मत–
निर्मम राग जगाओ।

अगर तार ही टूट गये तो–
वीणा नहीं बजेगी
मन की पीडा उफन–उफन कर–
मन को और कसेगी।

सब समाप्त हो गया मुझे कुछ—
पड़ता नहीं दिखाई
आँखों के भीतर तक केवल—
रहती धुन समाई।

री गुलाब! बस एक तुम्हीं हो—
साँस जहाँ रुक जाती
ज्यों कल्पना राग तरंगित—
हो-होकर फूट जाती।।

सप्तदश

री गुलाब! तुम आज नहीं हो—
पास यहाँ पर घर मे
हाथ नहीं है आज तुम्हारा—
मेरे बिछुडे कर मे।

लेकिन याद बनी तुम मेरे—
प्राणो मे रहती हो
वायु सुबह की जगती लगता—
तुम ही कुछ कहती हो।

इतनी घुली-मिली थी सब से—
अपने सब लगते थे
तेरे प्रति तो सब के मन में—
अपने-पन जगते थे।

कविराज गेंदूलाल जी मोदी—
पास यहीं रहते हैं
मेरी इस पीड़ा का वे भी—
दुःख अतुल सहते थे।

बडे दुखी थे आकर मुझको—
सारा दुख बताया
नाम तुम्हारे कबूतरो को—
जव का ढेर खिलाया

उनके मन मे भक्ति बडी है—
तुम पर स्नेह बहुत था
भाई और बहन का मन मे—
प्यार अचल अविरत था

ऐसे कितने ही हैं जिनको—
तुम अब छोड गयी हो
किसकी कैसे कहूँ, मुझी से—
तुम मुँह मोड गयी हो

जो सुनता है उसके मुँह से—
दर्द निकल ही आता
कोई अपना होश ठिकाना—
कभी नहीं रख पाता।

री गुलाब! अब देखो मुझ पर—
कैसी बीत रही है
मैं तो हारा लेकिन तेरी—
कैसी जीत रही है।

सिसक रहा है अगजग सारा—
तुम छोड़ कर किनारा
पहले ज्ञात तिमिर नहीं था—
अब है गहरा जिनारा।

री गुलाब ! सघन तिमिर अपार—
पार करूँ मुझे बल दो
सूख रहा है कंठ कभी का—
मुझको शीतल जल दो।।

अष्टदश

खोकर तुमको धडकन मेरी—
कितनी दीन हुई है
बिन गुलाब की बगिया सारी—
अब श्री—हीन हुई है।

बडा सँवारा नजर बाग यह—
मन मे राग जगा के
देख रहे थे लोग—बाग सब—
अपनी आँख उठा के

सिसक रहा है अगजग सारा–
तुम्हे छोड कर कितना
पहले इतना तिमिर नहीं था–
अब है गहरा जितना।

री गुलाब ! यह तिमिर अचानक–
पार करूँ कुछ बल दो
सूख रहा है कठ कहीं से–
मुझको शीतल जल दो।।

खोकर तुमको धडकन मेरी—
कितनी दीन हुई है
बिन गुलाब की बगिया सारी—
अब श्री—हीन हुई है।

बडा सँवारा नजर बाग यह—
मन मे राग जगा के
देख रहे थे लोग—बाग सब—
अपनी आँख उठा के

पत्ती–पत्ती तक पर तेरी–
खुशबू फैल रही थी
पुण्य–भावना यहाँ बसी थी–
जैसी कहीं नहीं थी

रोज तुम्हीं ने सींच–सींच कर–
इसको बडा किया था
अपने हाथो हर पौधे को–
तुमने खडा किया था

तेरे मन ही कोमलता की–
बगिया की हरियाली
तेरी हँसी–खुशी की इस पर–
छिटक रही थी लाली

तूने ही तो दु ख मे सुख मे–
इसको सदा सँवारा
इसके रेशे–रेशे पर था–
निखरा प्यार तुम्हारा

इसके जड की मिटटी तक को–
तूने सदा सहेजा
इस पर विपद पडी तो फूटता–
तेरा करुण कलेजा

इसको भी जब छोड चली क्या
ऐसी बात हुई थी?
चिर निद्रा मे गयी कहो क्या—
गहरी रात हुई थी?

तुम्हीं बताओ कोई कैसे—
इसे सँभाल सकेगा?
रिसते हुए व्रणो पर कोई—
परदा डाल सकेगा?

ऐसी भीषण आँधी है फिर—
कैसे कौन बचेगा?
बगिया के कोने—कोने मे—
हाहाकार मचेगा

री गुलाब! तू जानबूझकर
घोर कठोर बनी है।
दु ख की कैसी बदरी मेरे—
चारो ओर तनी है?

तुम्हीं बताओ इस सकट को
कैसे पार करूँगा?
मेरी कौन सुनेगा? जब मैं—
व्यथित पुकार करूँगा

मन मे साहस–शक्ति अपरिमित–
दृग में ज्योति अचल दो
याद तुम्हे रख सकूँ निरंतर–
इतना भर तो बल दो।।

एकोनविंश

री गुलाब! क्या मन मे कोई—
चाह न अब जगती है?
बिन गुलाब की बगिया कैसी—
शुष्क—विरस लगती है?

यह तो अभी शिशिर है कल जब—
यह भी बीत चलेगा
कोई फिर बसन्त का कैसे—
स्वागत यहाँ करेगा?

चुपके–से अमाराई मे जब–
कोकिल कूक उठेगी
बोलो मन म तीव्र जलन की–
कैसी हूक उठेगी?

किशुक के जब लाल लाल दल–
अपने आप खिलेगे
ऑखो से तब लहू निकलकर–
बहने नही लगेगे?

कलि–कली पर फूल–फूल पर–
भौरो का मँडराना
सच कहता हूँ सुन न सकूँगा–
उनका प्रेम तराना।

सूर्य–मुखी जब ॲगडाई ले–
प्रात काल जगेगी
उसकी रग–बिरगी चुनरी–
कैसी मुझे लगेगी?

हवा गुलाबी थिरक–थिरक कर–
नृत्य करेगी लय मे
बोलो फिर कैसा गुजरेगा–
मेरे मृदुल हृदय मे?

विहगा का जोडा जब नभ मे—
उडकर सैर करेगा
बोलो तब ओला क्या मेरे—
सिर पर नहीं पडेगा?

सरसिज की पखुडियो मे जब—
मधुकर स्वय बँधेगे
बोलो मेरे प्राणा पर तब—
पत्थर नही पडेगे?

कैसी कडी घडी आई है—
किसको आज बताऊँ?
कौन पारखी? कहाँ मिलेगा?
जिसको ह्रदय दिखाऊँ?

हलचल—सी मच रही ह्रदय म—
है भूचाल समाया
आज ऊषा की लाली मे क्यो—
ऐसा तम घिर आया?

बडी विकट घडियो मे जीवन—
का यह यान खडा है
समझो है आश्चर्य कि अब तक—
तन मे प्राण पडा है।

री गुलाब! अब तुम्हीं बताओ—
प्राण कहाँ सुख पाये?
बिन गुलाब की बगिया कैसी—
अपनी जान बचाये?

क्रम अजस्त्र है समय—सुरभि का—
कोई रोक न पाता
बिन गुलाब की बगिया मे मधु—
मास नहीं पर आता

किन्तु निदाघ पहुँच कर भी क्या—
शान्ति हृदय को देगा?
तप के साधन को झुलसा कर—
भस्म नहीं कर देगा?

सन–सन कर जब पवन चलेगा–
लू की जलन जगाये
कौन भला रह पायेगा तब–
अपना शीश उठाये?

तड़–तड़ तन से श्रम सीकर की–
बूँद गिरेगी भू पर
हृदय नहीं क्या बह जायेगा–
अपने आप पिघल कर?

ज्वाला का तूफान–बवण्डर–
दृग मे धूल भरेगा
बोलो तब वह किस प्राणी को–
अधा नहीं करेगा?

सिर पर जब मार्तण्ड तान कर
शर प्रचण्ड कर लेगा
सर्व–ग्रास करने वाला–
उच्छिष्ट छोड क्या देगा?

कुछ भी हो लगता है कोमल–
प्राण न बचने वाला
ऐसी गहरी व्यथा का जग मे–
कौन भला रखवाला?

किसी तरह बस समय काटना–
ही अब श्रेय बनेगा
क्षणभर दुख भुलाऊँ इतना
ही अब प्रेय बनेगा

घन–निदाघ के बाद धरा पर–
वर्षा जब आयेगी
मौसम के उस रिमझिम मे तब–
ऑख न थम पायेगी

आग हृदय मे और नयन मे–
पानी सदा रहेगा
झमझम झरते सावन मे भी
अविरल प्राण दहेगा

तडक–तडित् जब तडकेगा तब–
अन्तस शीर्ण न होगा?
बोलो कैसे उस पावस मे–
हृदय विदीर्ण न होगा?

टेर–टेर कर दादुर–स्वर जब–
भू पर शोर करेगा
बोलो कैसे दरक गया दिल–
उस क्षण धीर धरेगा?

बडी विपद है सोच-सोच कर—
        डरने मन लगता है
प्राणो मे डूबा आँखो पर—
        चढ़ने घन लगता है।

री गुलाब! अब राह यहाँ पर—
        तुम्हीं दिखाओ क्या है?
बिन गुलाब की बगिया का
        अस्तित्व बताओ क्या है?

एकविंश

री गुलाब! हर रोज तुम्हारी—
याद हृदय मे आती
तुलसी—विरवा पर प्रतिदिन तुम—
दीपक रही जलाती।

शाम—सबेरे रोज तुम्हारी—
चाप सुनाई पडती
मन की सब अनुरक्ति तुम्हारी—
भक्ति दिखाई पडती।

दृग के आगे रूप तुम्हारा—
दीप्तिमान हो उठता
श्रवण—रन्ध्र मे मन्द्र—मन्द्र स्वर—
कीर्ति—मान हो उठता।

गध अनावृत पुष्प—हास मे—
मधुर सुवास छिपा है
वैसे तुम मे मेरे जीवन—
का इतिहास छिपा है।

तुम्हे जानता उसको मेरा—
परिचय क्षीण नही है
कौन कहेगा मेरे मन की—
व्यथा नवीन नही है?

री गुलाब! वह कौन हृदय की—
पीडा जो हर लेगा?
तुलसी के विरवा पर अब तो—
ऑसू—दीप जलेगा

राग—रग की तितली तो अब—
इधर नहीं आयेगी
बिन गुलाब की बगिया तो अब—
स्वय सूख जायेगी।।

समाप्त